राजेन्द्र तिवारी

बनाम

बासुदेव प्रसाद एवं अन्य

9 नवंबर, 2001

[सैयद शाह मोहम्मद कादरी एवं एस. एन. फूकन, न्यायमूर्तिगण]

किराया नियंत्रण एवं बेदखली:

बिहार भवन (पट्टा किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982—धाराएँ 2(एफ) एवं (एच) तथा 11(बी), (सी) एवं (डी)-बेदखली का वाद-विचारण न्यायालय एवं प्रथम अपीलीय न्यायालय ने पाया कि पक्षकारों के बीच मकान मालिक एवं किरायेदार का संबंध मौजूद नहीं था--हालांकि, विचारण न्यायालय ने माना कि मकान मालिक को विवादित परिसर का स्वामित्व प्राप्त है। वाद खारिज कर दिया गया - उच्च न्यायालय ने मकान मालिक के स्वामित्व का निर्धारण करने के बाद दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश VIII नियम 7 के तहत न्यायसंगत डिक्री प्रदान करने के लिए मामले को प्रथम अपीलीय न्यायालय को वापस भेज दिया। अपील पर, यह माना गया कि वापसी उचित नहीं है क्योंकि "अधिनियम के तहत राहत मकान मालिक एवं किरायेदार के संबंध के अस्तित्व एवं बेदखली के आधारों की संतुष्टि पर निर्भर करती है, न कि पक्षों के स्वामित्व पर।"

किराया नियंत्रक-क्षेत्राधिकार-दायरा-अभिनिर्धारित: विशेष अधिनियम में निर्दिष्ट आधारों पर मुकदमों की सुनवाई करने का सीमित क्षेत्राधिकार है, न कि सामान्य दीवानी न्यायालयों का। इसलिए, यह उस विशेष अधिनियम में निर्दिष्ट आधारों के अलावा किसी अन्य आधार पर बेदखली का आदेश पारित नहीं कर सकता।

दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908--आदेश VII नियम 7--न्यायसंगत राहत प्रदान करना - दायरा-निर्णय: यह प्रावधान वाद में दावा की गई राहत से छोटी राहत प्रदान करने की अनुमति देता है, न कि उससे बड़ी राहत।

उत्तरदाता-वादी ने अपीलकर्ता-प्रतिवादी को बेदखल करने के लिए याचिका दायर की, जिसमें दोनों ने वाद परिसर पर अपना अधिकार जताया।

विचारण न्यायालय ने इस आधार पर याचिका खारिज कर दी कि पक्षों के बीच मकान मालिक एवं किरायेदार का कोई संबंध नहीं था। हालांकि, न्यायालय ने माना कि वादी-मकान मालिक को वाद परिसर का स्वामित्व प्राप्त था एवं उसे इसकी वास्तविक आवश्यकता थी।

प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अपील खारिज कर दी, लेकिन पक्षों के स्वामित्व के प्रश्न पर विचार नहीं किया।

उच्च न्यायालय ने द्वितीय अपील स्वीकार करते हुए यह माना कि न्यायसंगत डिक्री दी.प्र.सं. के आदेश VII नियम 7 के तहत उत्तरदाता-किरायेदार के विरुद्ध वादी-मकान मालिक के स्वामित्व के आधार पर बेदखली का आदेश पारित किया जा सकता है एवं मामले को प्रथम अपीलीय न्यायालय को वापस भेज दिया ताकि वह पक्षों के स्वामित्व के प्रश्न पर निष्कर्ष अभिलिखित करें।

इस न्यायालय में अपील करते हुए अपीलकर्ता ने तर्क दिया कि दी.प्र.सं. के आदेश VII नियम 7 के प्रावधान इस वाद पर लागू नहीं होते क्योंकि न्यायालय बिहार भवन (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982 के तहत सीमित क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर रहा था एवं उच्च न्यायालय इस मामले को प्रथम अपीलीय न्यायालय को वापस नहीं भेज सकता था क्योंकि अधिनियम के तहत बेदखली के वाद में, वाद परिसर के स्वामित्व का प्रश्न तय नहीं किया जा सकता क्योंकि यह कार्य दीवानी न्यायालय द्वारा अपने सामान्य क्षेत्राधिकार में किया जाना है। उत्तरदाता- वादी ने तर्क दिया कि एक बार जब वादियों ने अपना स्वामित्व स्थापित कर लिया, तो एक न्यायसंगत डिक्री पारित की जा सकती है, भले ही प्रतिवादी को किरायेदार न माना जाए।

अपील स्वीकार करते हुए न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया: 1. उच्च न्यायालय ने मामले को प्रथम अपीलीय न्यायालय को वापस भेजने में गलती की, ताकि वाद के पक्षों के स्वामित्व का निर्धारण किया जा सके एवं दी.प्र.सं. के आदेश VII नियम 7 के तहत डिक्री प्रदान की जा सके। [251-ए]

फर्म श्रीनिवास राम कुमार बनाम महाबीर प्रसाद एवं अन्य, **एआईआर (1951) एस.सी. 177 एवं** *भगवती प्रसाद बनाम ओइन्द्रमौल,* **एआईआर (1966) एस.सी. 735, विशिष्ट।**

2. चूंकि विचारण न्यायालय एवं प्रथम अपीलीय न्यायालय दोनों ने पाया कि वादी एवं प्रतिवादी के बीच "मकान मालिक एवं किरायेदार" का संबंध मौजूद नहीं था, इसलिए वाद की प्रकृति एवं न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए, पक्षों के स्वामित्व की आगे की जांच अनुचित थी। ऐसे मामले में, दी.प्र.सं. के आदेश VII नियम 7 के प्रावधान लागू नहीं होते हैं। [248-सी; 251-ए]

3. बिहार भवन (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982 के तहत वाद में राहत प्रदान करने के लिए अनिवार्य शर्त यह है कि वादी एवं प्रतिवादी के बीच 'मकान मालिक एवं किरायेदार' का संबंध होना चाहिए। न्यायालयों के समक्ष जांच का दायरा इस प्रश्न तक सीमित था कि क्या अधिनियम के तहत प्रतिवादी की बेदखली के आधार सिद्ध हुए हैं। अधिनियम की धारा 2 के खंड (एफ) एवं (एच) में क्रमशः "मकान मालिक" एवं "किरायेदार" शब्दों की व्यापक परिभाषा को देखते हुए, वाद की संपत्ति पर पक्षों के स्वामित्व का प्रश्न प्रासंगिक नहीं है। [247-एच; 248-ए-बी]

4. किराया नियंत्रक न्यायालय, जिसके पास विशेष अधिनियम में निर्दिष्ट आधारों पर मुकदमों की सुनवाई करने का सीमित अधिकार क्षेत्र है, स्पष्ट रूप से सामान्य दीवानी न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर है, एवं इसलिए अधिनियम में निर्दिष्ट आधार के अलावा किसी अन्य आधार पर उत्तरदाता को बेदखल करने का आदेश पारित नहीं कर सकता। हालांकि, अधिनियम के दायरे में वैकल्पिक राहत अनुमेय है, तो स्थिति भिन्न होगी। वादी के

स्वामित्व की जांच अधिनियम के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने वाले न्यायालय के दायरे से बाहर है।[250-एफ-जी]

5. जहां वाद में मांगी गई राहत बड़ी राहत है और यदि उसे प्रदान करने के लिए कोई मामला नहीं बनता है, लेकिन स्थापित तथ्य छोटी राहत प्रदान करने को उचित ठहराते हैं, तो आदेश VII नियम 7 पक्षों को ऐसी राहत प्रदान करने की अनुमति देता है। हालांकि, उक्त प्रावधानों के तहत, वाद में वादी द्वारा दावा की गई राहत से अधिक राहत प्रदान नहीं की जा सकती। [250-डी]

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: वर्ष 1998 का दीवानी अपील संख्या 3406

पटना उच्च न्यायालय के वर्ष 1990 के एस.ए. संख्या 304 में दिनांक 9.9.97 के निर्णय एवं आदेश से

अपीलकर्ता की ओर से - अखिलेश कुमार पांडे एवं अशोक पांडे

उत्तरदाताओं की ओर से - सुश्री आशा जैन मदन, मुकेश जैन एवं सुशील कुमार पाठक

न्यायालय का निर्णय निम्नलिखित द्वारा सुनाया गया

सैयद शाह मोहम्मद कादरी, न्यायमूर्ति विशेष अनुमति से दायर यह अपील पटना उच्च न्यायालय के वर्ष 1990 के द्वितीय अपील संख्या 304 के दिनांक 9 सितंबर, 1997 के निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध है।

पक्षकारों को विचारण न्यायालय में उनकी मौजूदा स्थिति के अनुसार संदर्भित किया गया है उत्तरदाता-वादी ने वार्ड संख्या 1 में स्थित 7-1/2 धुर क्षेत्रफल वाली जोत संख्या 1600 (नई) (पुरानी जोत संख्या 95) से अपीलकर्ता-प्रतिवादी को बेदखल करने के लिए स्वत्व वाद संख्या 167/1982 (12/1985) दायर किया, जिसका क्षेत्रफल मोहल्ला वाया बाजार, थाना सिवान टाउन, थाना संख्या 231, सिवान, बिहार है (संक्षेप में, 'वाद परिसर')। इसके तीन आधार थे -(1) धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (डी) के तहत 14 अगस्त, 1981 से प्रतिवादी द्वारा किराया भुगतान में चूक; (2) धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (सी) के

तहत वादी के पुत्रों के लिए सद्भावपूर्वक उचित व्यक्तिगत आवश्यकता; एवं (3) बिहार भवन (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982 (संक्षेप में, 'अधिनियम') की धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (बी) के तहत वाद परिसर को क्षति। वादीगण ने दावा किया कि उन्होंने 17 मार्च, 1981, 9 अप्रैल, 1981 एवं 14 अप्रैल, 1981 को पंजीकृत विक्रय विलेखों के तहत केदार नाथ सिन्हा से विवादित परिसर खरीदा था एवं उसके तुरंत बाद उसे उत्तरदाता को 300 रुपये प्रति माह के किराए पर दे दिया था; प्रतिवादी ने किराएदारी शुरू होने की तारीख से किराया नहीं चुकाया। वादीगण के छह पुत्र हैं; जिनमें से तीन बालिग हैं। वादी अपने बच्चों को व्यवसाय में स्थापित करना चाहते थे क्योंकि वे स्वयं बेरोजगार थे; इसलिए, उन्हें सद्भावनापूर्वक विवादित परिसर की आवश्यकता है। प्रतिवादी ने वाद का विरोध करते हुए इस बात से इनकार किया कि उसने वादियों से विवादित परिसर किराए पर लिया था। उसने कहा कि उसने उक्त केदार नाथ सिन्हा से विवादित परिसर किराए पर लिया था लगभग 33 वर्ष पहले। हालांकि, उसने आरोप लगाया कि उसने विवादित परिसर की खरीद के लिए एक समझौता किया था एवं उक्त केदार नाथ सिन्हा द्वारा 14 सितंबर, 1980 को उसके पक्ष में एक महादनामा (बिक्री समझौता) निष्पादित किया गया था एवं उस तिथि से वह विवादित परिसर के स्वामी के रूप में कब्जे में है। प्रतिवादी ने उप-न्यायाधीश, सिवान की न्यायालय में स्वत्व वाद संख्या 232/1983 भी दायर किया, जिसमें न्यायालय से दिनांक 14 सितंबर, 1980 के महादनामा के विशिष्ट निष्पादन का अनुरोध किया गया था। यह वाद अभी लंबित है। उसने इस बात से इनकार किया कि वादियों की व्यक्तिगत आवश्यकता का आधार उचित या वास्तविक था।

30 अप्रैल, 1985 को विचारण न्यायालय ने उपस्थित साक्ष्यों का मूल्यांकन करने के बाद बेदखली का वाद यह मानते हुए खारिज कर दिया कि वादी एवं प्रतिवादी के बीच "मकान मालिक एवं किरायेदार" का कोई संबंध नहीं था; न्यायालय ने पाया कि वादी के पास विवादित परिसर का स्वामित्व था; हालाँकि, उचित व्यक्तिगत आवश्यकता के प्रश्न पर

वादी के पक्ष में निर्णय दर्ज किया गया। विचारण न्यायालय के फैसले के खिलाफ, वादियों ने सिवान के पंचम अपर जिला न्यायाधीश की न्यायालय में स्वत्व अपील संख्या 96 1985 दायर की। 26 मई, 1990 को अपीलीय न्यायालय ने विचारण न्यायालय के फैसले को बरकरार रखते हुए अपील खारिज कर दी। इसके बाद वादियों ने पटना उच्च न्यायालय के समक्ष वर्ष 1990 का द्वितीय अपील संख्या 304 में अपना दावा पेश किया। 9 सितंबर, 1997 को उच्च न्यायालय ने अपील को स्वीकार करते हुए यह माना कि वादियों के स्वामित्व के आधार पर प्रतिवादी के विरुद्ध बेदखली का न्यायसंगत आदेश पारित किया जा सकता है। उच्च न्यायालय ने मामले को प्रथम अपीलीय न्यायालय को इस आधार पर वापस भेज दिया कि उसने पक्षों के स्वामित्व के प्रश्न पर कोई निर्णय दर्ज नहीं किया था। प्रतिवादी ने इस अपील में उच्च न्यायालय के उस निर्णय को चुनौती दी है।

उत्तरदाता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री पी.एस. मिश्रा ने तर्क दिया कि दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश VII नियम 7 के प्रावधान इस वाद पर लागू नहीं होंगे क्योंकि न्यायालय अधिनियम के अंतर्गत सीमित क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर रहा था। श्री मिश्रा ने तर्क दिया कि अधिनियम के अंतर्गत बेदखली के वाद में, वाद परिसर के स्वामित्व का प्रश्न तय नहीं किया जा सकता है एवं यह निर्णय दीवानी न्यायालय द्वारा अपने सामान्य क्षेत्राधिकार में किया जाना चाहिए, इसलिए, उच्च न्यायालय ने मामले को प्रथम अपीलीय न्यायालय को वापस भेजने में विधिगत त्रुटि की है, उन्होनें वादियों के स्वामित्व के प्रश्न का निर्णय करने तथा प्रतिवादी की बेदखली के लिए एक न्यायासंगत डिक्री पारित करने का निर्देश दिया।

वादी पक्ष की विद्वान अधिवक्ता सुश्री आशा जैन मदन ने तर्क दिया कि यह स्वीकार किया जाता है कि विवादित परिसर उक्त केदार नाथ सिन्हा का था एवं वादी पक्ष ने उससे तीन पंजीकृत विक्रय विलेखों के तहत इसे खरीदा था; इसलिए, उनके पास प्रथम दृष्टया स्वामित्व था एवं जैसा कि स्वीकार किया जाता है कि उक्त केदार नाथ सिन्हा ने इसे

प्रतिवादी को किराए पर दिया था, इसलिए अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा उसकी बेदखली के लिए एक न्यायसंगत आदेश प्रस्तावित किया जाना चाहिए था। चूंकि विचारण न्यायालय ने विक्रय विलेखों एवं वादी के विक्रेता के बयान के आधार पर यह निष्कर्ष दर्ज किया कि वादी मालिक थे, लेकिन प्रथम अपीलीय न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार नहीं किया, इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा प्रथम अपीलीय न्यायालय को वाद परिसर के स्वामित्व के संबंध में निष्कर्ष दर्ज करने का निर्देश देना सही था। सुश्री मदन ने तर्क दिया कि एक बार जब वादी ने वाद परिसर पर अपना स्वामित्व स्थापित कर लिया, तो भले ही उत्तरदाता को किरायेदार न माना जाए, फिर भी वाद परिसर से बेदखली के लिए प्रतिवादी के विरुद्ध न्यायसंगत आदेश पारित किया जा सकता है।

उपरोक्त दलीलों के आधार पर विचारणीय प्रश्न यह उठता है कि: क्या मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों के आधार पर उच्च न्यायालय का यह निर्णय विधिवत सही है कि प्रतिवादी को बेदखल करने का न्यायसंगत आदेश दी.प्र.सं. के आदेश VII नियम 7 के तहत पारित किया जा सकता है एवं मामले को प्रथम अपीलीय न्यायालय को वापस भेजा जा सकता है ताकि वह वाद परिसर के पक्षकारों के स्वामित्व के प्रश्न पर अपना निर्णय दर्ज करे एवं यदि वादी का स्वामित्व सिद्ध हो तो प्रतिवादी के विरुद्ध बेदखली का न्यायसंगत आदेश पारित करे।

यह स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (सी) एवं (डी) के तहत वादी द्वारा वाद परिसर से उत्तरदाता को बेदखल करने के लिए दायर वाद पर विचार करते समय, उच्च न्यायालय सहित न्यायालय अधिनियम के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर रहे थे, जो एक विशेष अधिनियम है। अधिनियम के अधीन वाद में राहत प्रदान करने के लिए अनिवार्य शर्त यह है कि वादी एवं उत्तरदाता के बीच 'मकान मालिक एवं किरायेदार' का संबंध होना चाहिए। न्यायालयों के समक्ष जांच का दायरा इस प्रश्न तक सीमित था कि क्या अधिनियम के तहत उत्तरदाता को बेदखल करने के आधार सिद्ध हुए हैं। अधिनियम की धारा

2 के खंड (एफ) और (एच) में क्रमशः "मकान मालिक" और "किरायेदार" शब्दों की व्यापक परिभाषा को देखते हुए, वाद परिसर पर पक्षों के स्वामित्व का प्रश्न प्रासंगिक नहीं है।

चूंकि विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय दोनों ने पाया कि वादी और प्रतिवादी के बीच 'मकान मालिक और किरायेदार' का संबंध मौजूद नहीं था, इसलिए वाद कीप्रकृति और न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए, पक्षों के स्वामित्व की आगे की जांच अनुचित थी।

चूंकि उच्च न्यायालय ने मामले को प्रथम अपीलीय न्यायालय को वापस भेज दिया है ताकि वह पक्षकारों के स्वामित्व के प्रश्न पर निर्णय ले सके और आदेश VII नियम 7 के तहत डिक्री जारी कर सके, इसलिए यहां उक्त प्रावधान का उल्लेख करना आवश्यक होगा:

नियम 7. राहत को विशेष रूप से बताया जाना चाहिए।

> प्रत्येक शिकायत में वादी द्वारा मांगी गई राहत का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाएगा, या तो सीधे तौर पर या वैकल्पिक रूप से, और सामान्य या अन्य राहत की मांग करना आवश्यक नहीं होगा, जो न्यायालय द्वारा उचित समझे जाने पर उसी हद तक दी जा सकती है, मानो उसकी मांग की गई हो और यही नियम प्रतिवादी द्वारा अपने लिखित बयान में मांगी गई किसी भी राहत पर भी लागू होगा।

आदेश VII नियम 7 को सीधे पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह मुख्य रूप से वाद पत्र में राहत के मसौदा तैयार करने से संबंधित है। इसके तीन भाग हैं - पहला भाग निर्देश देता है कि वादी द्वारा मांगी गई राहत को सीधे या वैकल्पिक रूप से स्पष्ट रूप से बताया जाना चाहिए। दूसरे भाग में यह सुस्थापित सिद्धांत शामिल है कि सामान्य या अन्य राहत की मांग करना आवश्यक नहीं है, जिसे न्यायालय मामले के तथ्यों के आधार पर उचित समझे तो उसी हद तक दे सकता है जैसे कि इसकी मांग की गई हो। तीसरा भाग

कहता है कि प्रतिवादी द्वारा अपने लिखित बयान में मांगी गई किसी भी राहत के संबंध में, यही नियम लागू होगा।

फर्म श्रीनिवास राम कुमार बनाम महावीर प्रसाद एवं अन्य, एआईआर (1951) एससी 177 में इस न्यायालय द्वारा यह निर्धारित किया गया है:

> सामान्यतः, न्यायालय वादी को ऐसे मामले पर राहत नहीं दे सकता जिसका कोई आधार अभिवेदन में न हो और जिस पर दूसरे पक्ष को बोलने का अवसर न दिया गया हो। परन्तु जब वादी द्वारा प्रस्तुत किया जा सकने वाला वैकल्पिक मामला न केवल उत्तरदाता द्वारा अपने लिखित बयान में स्वीकार किया गया हो, बल्कि वादी द्वारा वाद में किए गए दावे के उत्तर के रूप में स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया हो, तो उत्तरदाता द्वारा स्वयं प्रस्तुत मामले पर वादी को निर्णय देने में कोई अनुचित बात नहीं होगी। उत्तरदाता के स्वयं के कथन पर आधारित वादी की मांग को उत्तरदाता द्वारा आश्चर्य की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता है, और इन तथ्यों पर साक्ष्य प्रस्तुत करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि प्रतिवादी ने इन्हें अपने अभिवेदनों में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है। ऐसी परिस्थितियों में, जब प्रतिवादी के साथ किसी प्रकार का अन्याय नहीं हो सकता, तो वादी को अलग से वाद दायर करने के लिए विवश करना उचित नहीं होगा।

उस मामले में वादी ने विक्रय अनुबंध के विशिष्ट निष्पादन के लिए वाद दायर किया। उसने आरोप लगाया कि उसने अनुबंध के तहत प्रतिफल का एक हिस्सा प्रतिवादी को दिया था। प्रतिवादी ने अनुबंध के निष्पादन से इनकार किया। हालाँकि, उसने दलील दी कि उसने वादी से ऋण के रूप में धन लिया था। वादी विक्रय अनुबंध को साबित करने में विफल रहा, हालाँकि वादी ने अनुबंध के तहत भुगतान की गई राशि की वसूली के लिए कोई वैकल्पिक राहत का दावा नहीं किया। न्यायालय ने आदेश VII नियम 7 के तहत उत्तरदाता द्वारा कथित रूप से ऋण के रूप में ली गई राशि की वसूली के लिए डिक्री पारित की।

भगवती प्रसाद बनाम चंद्रमौल, एआईआर (1966) एससी 735 में, वादी ने उत्तरदाता को बेदखल करने के लिए यह कहते हुए वाद दायर किया कि उसने प्रतिवादी को भवन के अलग-अलग हिस्से किराए पर दिए थे, प्रत्येक हिस्से का निर्माण पूरा होने पर। प्रतिवादी ने दलील दी कि उसने मकान का निर्माण वादी की ज़मीन पर किया था। उनके बीच समझौता यह था कि मकान पर तब तक उसका कब्ज़ा बना रहेगा जब तक कि मकान के निर्माण में खर्च की गई राशि वादी द्वारा वापस नहीं कर दी जाती। वादी द्वारा प्रस्तुत किरायेदारी समझौते और प्रतिवादी द्वारा स्थापित मामले को विचारण न्यायालय ने अविश्वासपूर्वक स्वीकार कर लिया; फिर भी विचारण न्यायालय ने मकान मालिक और किरायेदार का संबंध मानते हुए उचित किराया निर्धारित किया और उत्तरदाता को बेदखल करने तथा उसके द्वारा निर्धारित दर पर किराया वसूलने के लिए वाद का फैसला सुनाया। उच्च न्यायालय ने किरायेदारी समझौते के संबंध में विचारण न्यायालय के फैसले को अपास्त कर दिया, लेकिन प्रतिवादी को बेदखल करने के फैसले की पुष्टि की। उच्च न्यायालय द्वारा प्रदत्त प्रमाण पत्र पर इस न्यायालय में अपील करने पर, चार न्यायाधीशों की पीठ की ओर से मुख्य न्यायाधीश गजेंद्रगडकर ने टिप्पणी की:

> "सामान्य नियम निस्संदेह यही है कि राहत पक्षों द्वारा किए गए अभिवेदनों पर आधारित होनी चाहिए। लेकिन जहां वाद के दोनों पक्षों के स्वामित्व से संबंधित महत्वपूर्ण मामले, भले ही अप्रत्यक्ष रूप से या अस्पष्ट रूप से ही क्यों न उठाए गए हों, और उनके बारे में साक्ष्य प्रस्तुत किए गए हों, तो यह तर्क कि कोई विशेष मामला अभिवेदनों में स्पष्ट रूप से नहीं उठाया गया था, विशुद्ध रूप से औपचारिक और तकनीकी होगा और हर मामले में सफल नहीं हो सकता। इस तरह की आपत्ति पर विचार करते समय न्यायालय को यह देखना होगा कि क्या पक्षकारों को पता था कि विचाराधीन मामला वाद में शामिल था, और क्या उन्होंने इसके बारे में साक्ष्य प्रस्तुत किए थे? यदि ऐसा प्रतीत होता है कि पक्षकारों को यह नहीं पता था कि

मामला वाद में विचाराधीन था और उनमें से एक को इसके संबंध में साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर नहीं मिला, तो यह निस्संदेह एक अलग मामला होगा। एक पक्ष को ऐसे मामले पर भरोसा करने की अनुमति देना जिसके संबंध में दूसरे पक्ष ने साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है और उसे साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर नहीं मिला है, पूर्वाग्रह को बढ़ावा देगा, और एक पक्ष के साथ न्याय करते हुए न्यायालय दूसरे पक्ष के साथ अन्याय नहीं कर सकता।"

यदि वाद में मांगी गई राहत बड़ी राहत है और यदि उसे देने का कोई मामला नहीं बनता है, लेकिन स्थापित तथ्य छोटी राहत देने को उचित ठहराते हैं, तो आदेश VII नियम 7 पक्षकारों को ऐसी राहत देने की अनुमति देता है। हालांकि, उक्त प्रावधानों के तहत वाद में वादी द्वारा दावा की गई राहत से बड़ी राहत नहीं दी जा सकती।

ये वे मामले हैं जहाँ मुकदमों की सुनवाई करने वाली अदालतें साधारण दीवानी न्यायालय थीं, जिनके पास वैकल्पिक राहत देने और आदेश VII नियम 7 के तहत डिक्री पारित करने का अधिकार क्षेत्र था। किराया नियंत्रक न्यायालय, जिसके पास विशेष अधिनियम में निर्दिष्ट आधारों पर मुकदमों की सुनवाई करने का सीमित अधिकार क्षेत्र है, स्पष्ट रूप से साधारण दीवानी न्यायालय का अधिकार क्षेत्र नहीं रखता है और इसलिए अधिनियम में निर्दिष्ट आधार के अलावा किसी अन्य आधार पर प्रतिवादी को बेदखल करने की डिक्री पारित नहीं कर सकता है। यदि, हालांकि, वैकल्पिक राहत अधिनियम के दायरे में अनुमेय है, तो स्थिति भिन्न होगी।

इस मामले में विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालय द्वारा वादियों को राहत देने से इनकार करने का कारण यह है कि वाद का मूल आधार, अर्थात् वादी मकान मालिक हैं और प्रतिवादी किरायेदार है, सर्वसम्मति से स्थापित नहीं पाया गया है। किसी भी स्थिति में, वादियों के स्वामित्व की जाँच करना अधिनियम के अंतर्गत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने वाली न्यायालय के दायरे से बाहर है। ऐसी स्थिति में, उच्च न्यायालय का आक्षेपित आदेश,

जिसमें मामले को प्रथम अपीलीय न्यायालय को पक्षकारों के स्वामित्व के प्रश्न पर निर्णय दर्ज करने के लिए वापस भेजा गया है, अनुचित और अस्थिर है। इसके अलावा, जैसा कि ऊपर बताया गया है, ऐसे मामले में आदेश VII नियम 7 के प्रावधान लागू नहीं होते हैं। इन कारणों से उपर्युक्त मामले प्रतिवादी के लिए सहायक नहीं हैं। इस स्थिति में हम यह मानने के लिए बाध्य हैं कि उच्च न्यायालय ने वाद को प्रथम अपीलीय न्यायालय को वापस भेजने में गलती की है, ताकि वाद परिसर पर पक्षों के स्वामित्व का निर्धारण किया जा सके और आदेश VII नियम 7 के तहत डिक्री प्रदान की जा सके।

हालांकि, हम यह स्पष्ट करते हैं कि यह निर्णय वादियों को स्वामित्व की घोषणा और वाद परिसर के कब्जे की वसूली के लिए प्रतिवादी के विरुद्ध वाद दायर करने से नहीं रोकता है। यदि ऐसा वाद आज से तीन महीने के भीतर दायर किया जाता है, तो हम निर्देश देते हैं कि इसकी सुनवाई प्रतिवादी द्वारा दायर वाद, स्वामित्व वाद संख्या 232/1983, के साथ की जाएगी, जो उप-न्यायाधीश, सिवान (प्रदर्श संख्या 11) की न्यायालय में उक्त केदार नाथ सिन्हा और वादियों के विरुद्ध अनुबंध के विशिष्ट निष्पादन के लिए दायर किया गया है।

परिणामस्वरूप, चुनौती दी गई उच्च न्यायालय का निर्णय अपास्त किया जाता है। वादी (उत्तरदाताओं) का वाद खारिज किया जाता है। प्रतिवादी (अपीलकर्ता) की अपील तदनुसार स्वीकार की जाती है, लेकिन मामले की परिस्थितियों को देखते हुए बिना किसी लागत के।

अपील की अनुमति दी गई।

के.के.टी.

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।